उत्तराखण्ड उच्च न्यायालय,
नैनीताल

आपराधिक प्रकीर्ण प्रार्थना पत्र संख्या 530 वर्ष 2020

कार्तिक जयशंकर एवं अन्य ..... याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तराखंड राज्य एवं अन्य .....उत्तरदाता

उपस्थितः–

याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता–श्री पी.बी. सुरेश एवं श्री बी.एस. अधिकारी।
राज्य की ओर से विद्वान अधिवक्ता– श्री वी.के. जेमिनी, डी0ए0जी0 व सुश्री मीना बिष्ट, ब्रीफ होल्डर।
विपक्षी संख्या 2 की ओर से विद्वान अधिवक्ता–श्री अरविंद वशिष्ठ, वरिष्ठ अधिवक्ता एवं श्री विवेक पाठक।

निर्णय

माननीय रविन्द्र मैठाणी, जे0 (मौखिक)

प्रस्तुत याचिका में जिला और सत्र न्यायाधीश, विशेष न्यायाधीश, एस0सी0/एस0टी0 एक्ट, नैनीताल द्वारा विशेष सत्र विचारण संख्या 06/2020, राज्य बनाम श्रीमती पार्वती लाल एवं अन्य में दाखिल आरोप पत्र दिनांकित 28.07.2020, संज्ञान आदेश दिनांकित 21.07.2020 एवं मामले की सम्पूर्ण कार्यवाही को चुनौती दी गयी है।

2. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्तगण को सुना गया एवं दस्तावेजों का अवलोकन किया गया।

3. प्रस्तुत मामले के तथ्य निम्नवत् हैं कि प्रस्तुत मामला राजस्व पुलिस थाना सरना, तहसील धारी, जिला नैनीताल में पंजीकृत मुकदमा अपराध संख्या 03/2020 से सम्बन्धित है, जिसमें विपक्षी संख्या 2 द्वारा भारतीय दंड संहिता की धाराओं 504, 506 और 427 और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धाराओं 3 (i) (द), 3 (i) (ध), 3 (i) (य)

के तहत मुकदमा दर्ज कराया गया था। प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुसार दिनांक 27.05.2020 को, जब सूचनाकर्ता अपने पुत्र और विजय अधिकारी के साथ जीलिंग एस्टेट में स्थित अपनी संपत्ति में जा रहे थे, तो उन्होंने देखा कि उनके घर के ताले तोड़ दिए गए हैं और घर से फर्नीचर और अन्य वस्तुएं गायब हो गई हैं। प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुसार याचिकाकर्ता द्वारा सूचनाकर्ता को गाली–गलौच व अपमानित किया गया एवं जातिसूचक टिप्पणी की गयी। उनके द्वारा उसे धमकियां भी दी गयी कि वे उसे उस जगह पर रहने की अनुमति नहीं देंगे। प्रस्तुत प्रथम सूचना रिपोर्ट में विवेचना पूर्ण कर आरोप पत्र न्यायालय में दाखिल किया जा चुका है, जिस पर न्यायालय द्वारा संज्ञान भी लिया जा चुका है, जो कि खारिज किये जाने योग्य है।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा कथन किया गया है कि याची द्वारा आरोप पत्र को चुनौती दी गयी है। यदि आरोप पत्र रद्द किया जाता है तो तलबी आदेश स्वतः ही समाप्त हो जाएगा। याचिकाकर्ता द्वारा अपने तर्कों में निम्नलिखित बिंदु प्रस्तुत किये गये।

4.1 तलबी आदेश एक अंतर्वर्ती आदेश है। यह अधिनियम की धारा 14क के अनुसार अपीलीय नहीं है।

4.2. अधिनियम की धारा 14(2)ए के अनुसार केवल जमानत एक अंतर्वर्ती आदेश है, जिसके खिलाफ अपील की जा सकती है। इस मामले में विद्वान अधिवक्ता द्वारा वी.सी. शुक्ला बनाम राज्य द्वारा सी.बी.आई., 1980 एस.सी.सी. 92 में पारित न्यायिक निर्णय का हवाला दिया है।

4.3 वी.सी. शुक्ला (उपरोक्त) मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह अवधारित करने हेतु परीक्षण निर्धारित किया है कि अंतरिम आदेश क्या होता है और अंतिम आदेश क्या होता है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अवधारित किया है कि–

> ''34. जब न्यायालय द्वारा अधिवक्ता के द्वारा प्रस्तुत तर्कों का बहस के स्तर पर विचार किया जायेगा, तब मामले के अन्य पहलुओं को भी ध्यान में रखा जायेगा। अतः यह कहना पर्याप्त है कि फेडरल कोर्ट और अंग्रेजी निर्णयों के द्वारा भी यह दृढ़ता से समर्थित किया गया है कि यदि कोई

आदेश, पक्षकारों के अधिकारों को एक बार में ही निर्धारित नहीं करता या निर्णय नहीं लेता है, तो यह एक अंतिम नहीं बल्कि अंतरिम आदेश होता है। इस प्रकार, उपरोक्त प्राधिकारों का विचार करने पर, निम्नलिखित प्रस्ताव उभरते हैं:"

(1) वह आदेश जो पक्षकारों के अधिकारों को निर्धारित नहीं करता है, बल्कि केवल मुकदमें या परीक्षण के एक पहलू को ही निर्धारित करता है, वह एक अंतरिम आदेश है,

(2) अंतरिम आदेश की अवधारणा को एक अंतिम आदेश के विपरीत में स्पष्ट करना होगा। दूसरे शब्दों में, यदि कोई आदेश एक अंतिम आदेश नहीं है, तो यह एक अंतरिम आदेश होगा,

(3) अंग्रेजी न्यायालयों और फेडरल न्यायालयों द्वारा सामान्यतः यह एक स्वीकृत परीक्षा है कि यदि आदेश एक तरीके से निर्धारित किया जाता है, तो यह कार्यवाही को समाप्त कर देता है, लेकिन अगर यह अन्य तरीके से निर्धारित किया जाता है, तो कार्यवाही जारी रहेंगी, क्योंकि हमारे मतानुसार आपराधिक प्रक्रिया संहिता में 'अंतरिम आदेश' शब्द का उपयोग बहुत व्यापक अर्थ में किया गया है, जिसमें मध्यवर्ती या अर्द्ध न्यायिक आदेश भी सम्मिलित हैं।

(4) विशेष न्यायालय द्वारा आरोपी को उन्मोचित करने वाला कोई आदेश निःसंदेह रूप से एक अंतिम आदेश होगा, क्योंकि यह अंततः पक्षकारों के अधिकारों को निर्धारित करता है और विवाद को समाप्त करता है। इस प्रकार न्यायालय के समक्ष पूरी प्रक्रिया को समाप्त करता है, ताकि इसके बाद कोई कार्यवाही न्यायालय द्वारा की जानी शेष न रहे।

(5) यद्यपि कानून ऐसे अंतरिम आदेश के खिलाफ अपील की अनुमति नहीं देता है, फिर भी अभियुक्त को बिना अनुतोष नहीं छोड़ा जा सकता है, क्योंकि उपयुक्त मामलों में, अभियुक्त, संविधान के अनुच्छेद 136 के अन्तर्गत इस न्यायालय के पास आरोप विरचन के आदेश के विरूद्ध भी अपनी याचिका दायर कर सकता है। अतः यह नहीं कहा जा सकता है कि आरोप विरचन के आदेश के विरूद्ध अपील न होने के कारण, अभियुक्त को गंभीर क्षति कारित हो एवं उसके पास कोई अनुतोष उपलब्ध न हो।

4.4. अधिनियम की धारा 14क इस न्यायालय को धारा 482 दण्ड प्रक्रिया

संहिता के तहत प्राप्त क्षेत्राधिकार को समाप्त नहीं करता। सारवान न्याय को सुनिश्चित करने हेतु अधिनियम की धारा 14क के तहत रोक के बावजूद भी यह न्यायालय क्षेत्राधिकारिता का प्रयोग कर सकता है।

4.5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा पृथ्वी राज चौहान बनाम भारत संघ और अन्य, 2020 (4) एस.सी.सी. 727, इन री – अपराधों के निवारण के तहत अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) संशोधन अधिनियम, 2015 की धारा 14, 2018 एस.सी.सी. ऑनलाईन ऑल **2087** ("इलाहाबाद मामला") और भारत संघ बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2020 (4) एस.सी.सी. 761 में प्रतिपादित विधि के सिद्धांतों का हवाला दिया गया है।

4.6. पृथ्वी राज चौहान (उपरोक्त) मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अधिनियम की धाराओं 18 और 18ए के प्रावधानों का व्याख्यान किया। अधिनियम की धारा 18 यह प्रावधानित करती है कि संहिता की धारा 438 इस अधिनियम के तहत अपराध करने वाले किसी व्यक्ति पर लागू नहीं होगी। इसके अनुसार संहिता की धारा 438 किसी ऐसे मामले में लागू नहीं होगी, जहां पर किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी इस अधिनियम के अन्तर्गत अपराध कारित करने के कारण हुयी हो। पृथ्वी राज चौहान (उपरोक्त) मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इन पहलुओं पर विचार किया एवं अवधारित किया कि यदि अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत प्राथमिक तौर पर मामला नहीं बनता है, तो अधिनियम के प्रतिबंध लागू नहीं होंगे। इसके अनुसार, प्रस्तर संख्या 11 और 32 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यहां अवधारित किया कि–

> ''11. जहां तक धारा 438 दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के लागू होने का प्रश्न है यह 1989 अधिनियम के अन्तर्गत आने वाले मामलों में लागू नहीं होते। हालांकि, यदि शिकायत में अधिनियम के अन्तर्गत प्रथम दृष्टया मामले के प्रमाण मौजूद नहीं है, तो धाराओं 18 और 18क(झ) के प्रतिबंध लागू नहीं होंगे। हमने समीक्षा याचिकाओं को निर्धारित करते समय इस पहलू को स्पष्ट किया है।
>
> ''32. जहां तक धारा 18ए और जमानत का प्रश्न है जस्टिस मिश्रा ने यह कहा है कि ऐसे मामलों में जहां किसी शिकायत में गिरफ्तारी के लिए आवश्यक रूप से प्राथमिक तौर पर सामग्री मौजूद नहीं है, वहां पर

न्यायालय को गिरफ्तारी से पूर्व जमानत प्रदान करने की अन्तर्निहित शक्ति प्राप्त है।

4.7. इलाहाबाद मामले में, अधिनियम की धारा 14क के प्रावधानों की चर्चा की गई है। माननीय न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के प्रस्तर संख्या 93 में प्रतिपादित किया गया कि "इस प्रश्न का जवाब देते समय, हम यह जानते हैं कि अनुच्छेद 226 एवं 227 संविधान के मूलभूत ढांचे का हिस्सा हैं। जैसा कि माननीय उच्चतम न्यायालय ने कहा है (द्वारा स्पेशल सैल नई दिल्ली) कि विधायिका के किसी कृत्य द्वारा यह शक्तियां कम या दूर नहीं की जा सकती। वो मानक एवं आधार भी प्रतिपादित किये गये हैं जिनमें धारा 482 दण्ड प्रक्रिया संहिता के प्रावधान लागू किये जा सकते हैं। यह विधिक अधिकारों को प्रतिबंधित करने का प्रश्न नहीं है, परंतु क्या वो निर्णय, सजा या आदेशों में लागू किये जा सकते हैं, जो अन्यथा अधिनियम की धारा 14क के अंतर्गत अपीलीय हैं।"

4.8. माननीय उच्च न्यायालय द्वारा इस प्रश्न का उत्तर प्रस्तर संख्या 121बी. में दिया है, जो इस प्रकार है–

"121.....

.....

बी. क्या संशोधित अधिनियम की धारा 14क में भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226/227 के प्रावधानों या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397 के तहत पुनरीक्षण या संशोधन या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत याचिका पोषणीय है ? अन्य शब्दों में, क्या संशोधित अधिनियम की धारा 14क के तहत उच्च न्यायालय को अनुच्छेद 226/227 के अंतर्गत प्राप्त शक्तियां या धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के प्राप्त पुनरीक्षण की शक्ति का अधिकार प्रतिबंधित हो गया है ?

हम इस प्रश्न (बी.) का उत्तर इस प्रकार देते हैं कि इस न्यायालय के संवैधानिक एवं अंतर्निहित अधिकार धारा 14क द्वारा समाप्त नहीं किये गये हैं, परंतु वे उन परिस्थितियों में लागू नहीं होंगे, जिनकी धारा 14क के तहत अपील की जा सकती है। जहां तक न्यायालय की पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार की शक्तियों का प्रश्न है हमें लगता है कि धारा 397 दण्ड प्रक्रिया संहिता के प्रावधान धारा 14क के प्रावधानों के कारण बाहर हो गये

हैं। हम अपने निष्कर्ष को धारा 14क के उप–धारा (1) में पाये जाने वाले शब्द "आदेश" की परिधि में भी लागू करते हैं, जिनमें अन्तर्वर्ती आदेश भी सम्मिलित हैं।"

4.9. भारत संघ (उपरोक्त) मामले में भी संहिता की धारा 482 के प्रावधानों के प्रयोग पर विचार किया गया है, जो अधिनियम के तहत अपराधों से संबंधित मामलों में है। माननीय उच्चतम न्यायालय ने इसके अलावा झूठे मामलों को दर्ज करने और प्रभावित व्यक्तियों के अनुतोष पर भी विचार किया है। यह अवधारित किया गया है कि ऐसे अवसरों पर संहिता की धारा 482 की प्रक्रिया को अपनाया जा सकता है। प्रस्तर संख्या 52 एवं 60 में, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा यह अवधारित किया कि–

"52 अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों द्वारा कानून के प्रावधानों का दुरुपयोग करने की कोई उपधारणा नहीं है और इसे सामान्य जाति एवं प्रभावशाली वर्ग के सदस्यों द्वारा प्रयोग नहीं किया जाता है। झूठी रिपोर्ट को दर्ज करने के लिए, यह कहा नहीं जा सकता है कि किसी व्यक्ति की जाति उसका कारण है। यह मानव दोष के कारण होता है और न कि जाति के कारण होता है। जाति की ऐसे कार्य में कोई भूमिका नहीं है। दूसरी ओर अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों के सदस्य आमतौर पर पहले सूचना रिपोर्ट करने में ही असमर्थ होते हैं, और ज्यादातर, झूठी रिपोर्ट करने के लिए साहस नहीं जुटाते हैं। यदि यह झूठी या सारवान रहित पायी जाये तो इसकी जांच करने के लिए न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किया जा सकता है, परंतु दुरूपयोगों के कारण कानून को नहीं बदला जा सकता। ऐसी स्थिति में, यह मामला धारा 482 दण्ड प्रक्रिया संहिता में सम्मिलित किया जा सकता है।"

''60 यदि किसी व्यक्ति को अपनी गिरफ्तारी का भय हो या अपमानित या झूठे केस में फंसाने का भय हो तो वह धारा 482 दण्ड प्रक्रिया संहिता के तहत उच्च न्यायालय में जा सकता है, जैसा कि उडीसा राज्य बनाम देवेन्द्र नाथ पाधी (2005) 1 एस0सी0सी0 568 में अवधारित किया गया है।

4.10. प्रस्तुत मामले में कोई प्रथम दृष्टया मामला नहीं पाया गया। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा तर्क दिया गया है कि पक्षकारों के मध्य संपत्ति का विवाद है और जो भी आरोपित घटना हुई है वह प्रथम सूचना रिपोर्ट में स्पष्ट रूप से उल्लिखित है कि वह संपत्ति विवाद के कारण हुयी है। विद्वान

अधिवक्ता द्वारा तर्क दिया गया कि ऐसे मामलों में, अधिनियम के प्रावधान लागू नहीं होते हैं।"

4.11. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा अपने मामले के समर्थन में खुमान सिंह बनाम मध्य प्रदेश, 2019 एस0सी0सी0 ऑनलाईन एस0सी0 1104 और हितेश वर्मा बनाम उत्तराखंड और अन्य (2020) 10 एस0सी0सी0 710 का हवाला दिया गया।

4.12. खुमान सिंह (उपरोक्त) में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिनेश उर्फ बुद्धा बनाम राजस्थान राज्य **(2006) 3** एस0सी.सी. **771** प्रस्तर 15 में प्रतिपादित सिद्धांतों को स्वीकार करते हुए अवधारित किया कि–

15.''अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम की धारा 3(2)(v) के लागू होने के लिए यह महत्वपूर्ण है कि किसी व्यक्ति के विरूद्ध अपराध उसकी अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के होने के कारण किया गया हो। उस मामले में, इस तथ्य को समर्थित करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं था, और यह साबित नहीं किया गया था कि बलात्कार पीड़िता के साथ इसलिए किया गया कि वह अनुसूचित जाति की थी। उक्त साक्ष्य के अभाव में अधिनियम की धारा 3(2)(v) लागू नहीं होती है और उस मामले में निर्धारित सजा, जिसमें उम्रकैद और जुर्माना शामिल था, लागू नहीं होती।

4.13. यह सिद्धांत हितेश वर्मा (उपरोक्त) के मामले में भी अपनाया गया था। मामले के प्रस्तर संख्या 13 और 18 में, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया कि–

"13. अधिनियम की धारा 3(1)(द) के अंतर्गत अपराध अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति के सदस्य को अपमानित करने के इरादे से किया गया हो। एक व्यक्ति के प्रति सभी अपमान या धमकी अधिनियम के अंतर्गत एक अपराध नहीं होगा जब तक ऐसा अपमान या धमकी उस व्यक्ति के अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति से संबंधित नहीं हो। अधिनियम का उद्देश्य अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की समाज–आर्थिक स्थिति में सुधार करना है क्योंकि उन्हें कई नागरिक अधिकारों से वंचित किया जाता है। इस प्रकार, एक अपराध अधिनियम के अंतर्गत मान्य होगा जब समाज के असुरक्षित वर्ग के सदस्य को

अपमान, निर्ममता और परेशानी का सामना करना पड़े। संपत्ति के मामले में किसी भी पक्ष के द्वारा न तो अपमान, न निर्ममता और न ही परेशानी कराने का उद्देश्य होता है। प्रत्येक नागरिक को कानून के अनुसार उनकी अधिकारों एवं उपचारों का प्रयोग करने का अधिकार होता है। इसलिए, यदि अपीलार्थी या उसके परिवार के सदस्यों ने सिविल न्यायालय के अधिकार का उपयोग किया है, या विपक्षी द्वारा सिविल न्यायालय के अधिकार का प्रयोग किया है तब यह कहा जा सकता है कि पक्षकार विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार अपने अनुतोषों को प्राप्त कर रहे हैं। अतः यह माना जा सकता है कि ऐसा कृत्य इसलिए नहीं किया गया है कि विपक्षी संख्या 2 अनुसूचित जाति का सदस्य है।

''18. इस अधिनियम के तहत अपराध केवल इस तथ्य पर स्थापित नहीं होता है कि सूचनादाता किसी अनुसूचित जाति का सदस्य है, जब तक उसका उद्देश्य पीड़िता को जो कि अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के सदस्य के रूप में है, को परेशान करने का न हो। वर्तमान मामले में, पक्षकार संपत्ति के स्वामित्व पर वाद–विवाद कर रहे हैं। अपशब्दों का आरोप संपत्ति के अधिकार का दावा करने वाले व्यक्ति के खिलाफ है। अतः यदि ऐसा व्यक्ति अनुसूचित जाति का सदस्य है, तो अधिनियम की धारा 3(1)(द) के तहत अपराध नहीं बनता है।"

4.14. अधिनियम के प्रावधान लागू नहीं होंगे, क्योंकि घटना सार्वजनिक दृश्य में नहीं हुई। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा अपने मामले के समर्थन में हितेश वर्मा के प्रावधानों का हवाला दिया। न्यायालय द्वारा उक्त वाद में "सार्वजनिक दृश्य में किसी भी स्थान" का व्याख्यान किया है।

न्यायालय ने अपने निर्णय के प्रस्तर संख्या 14 में अवधारित किया है कि–

''14. इस प्रावधान का एक और महत्वपूर्ण घटक है 'सार्वजनिक दृश्य में किसी भी स्थान' पर अपमान या धमकी। 'सार्वजनिक दृश्य में स्थान' को क्या माना जाए, यह मुद्दा इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत हुआ था। स्वर्ण सिंह बनाम राज्य **(2008) 8** एस0सी.सी. **435: (2008) 3** एस0सी.सी. (कि.) 527,. न्यायालय ने 'सार्वजनिक स्थान' और 'सार्वजनिक दृश्य में किसी भी स्थान' के बीच का अंतर बताया था। प्रस्तुत मामले में यह निर्धारित किया गया था कि यदि किसी अपराध को इमारत के बाहर, उदाहरण के लिए घर के बाहर के लॉन में, किया जाता है

और लॉन को सड़क या बाहरी सीढ़ियों से कोई देख सकता है, तो लॉन निश्चित रूप से सार्वजनिक दृश्य में आने वाला स्थान होगा। इसके विपरीत यदि टिप्पणी भवन के अंदर की जाती है, लेकिन कुछ लोग सार्वजनिक हैं (केवल रिश्तेदार या दोस्त नहीं) तो यह अपराध नहीं होगा, क्योंकि यह सार्वजनिक दृश्य में नहीं है। यह वाक्य स्वर्ण सिंह के मामले में प्रतिपादित प्रस्तर संख्या 15 के सिद्धांत से विपरीत प्रतीत होता है। यदि कोई टिप्पणी भवन के अंदर की जाती है, लेकिन कुछ सार्वजनिक सदस्य भी वहां पर मौजूद होत हैं, जो केवल रिश्तेदार या दोस्त नहीं हो, तब भी यह अपराध होगा, क्योंकि यह सार्वजनिक दृश्य में हुआ है। न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया कि न्यायालय ने निम्नलिखित रूप में निर्णय दिया है। (एस.सी.सी.) पृष्ठ 443–44 प्रस्तर संख्या 28।

"28. प्रथम सूचना रिपोर्ट में यह आरोप लगाया गया कि विनोद नागर प्रथम सूचनाकर्ता को जब वह अपने आवास में बने कार पार्किंग में खड़ा था तब विपक्षी संख्या 2 एवं 3 द्वारा उसे 'चमार'' कहकर अपमानित किया गया। हमारी राय में यह निश्चित रूप से सार्वजनिक दृश्य में स्थान था, क्योंकि एक घर का द्वार निश्चित रूप से सार्वजनिक दृश्य में स्थान होता है। यदि कथित अपराध भवन के अंदर किया जाता और यह सार्वजनिक दृश्य में नहीं होता हो यह अलग मामला हो सकता था। हालांकि यदि अपराध भवन के बाहर जैसे कि घर के बाहरी लॉन में किया जाता है और लॉन को किसी रास्ते या सड़क के बाहरी सीमा या दीवार से देखा जा सकता है तो लॉन निश्चित रूप से सार्वजनिक दृश्य में स्थान होगा। इसके अलावा यदि टिप्पणी भवन के अंदर की जाती है, लेकिन कुछ सार्वजनिक सदस्यं वहां पर मौजूद होते हैं जो केवल रिश्तेदार या दोस्त नहीं है तो भी यह एक अपराध होगा, क्योंकि यह सार्वजनिक दृश्य में कारित हुआ है।" हमें इसलिए 'सार्वजनिक दृश्य में किसी भी स्थान' शब्द को 'सार्वजनिक स्थान' शब्द से गलती नहीं करनी चाहिए। एक स्थान निजी स्वामित्व हो सकता है, लेकिन फिर भी सार्वजनिक दृश्य में हो सकता है। दूसरी ओर, सार्वजनिक स्थान सामान्य रूप से सरकार या नगरपालिका (या अन्य स्थानीय निकाय) या गाँव सभा या राज्य की कोई उपकरण संस्था द्वारा स्वामित्व रखा जाने वाला स्थान होगा, निजी व्यक्तियों या निजी संगठनों द्वारा नहीं।"

4.15 प्रस्तुत मामले में जांच पक्षपात पूर्ण रही है। जांचकर्ता (विवेचक) ने दिनांक 24.06.2020 को याचिकाकर्ता संख्या 1 को अधिनियम की धारा 14क के

तहत नोटिस प्रेषित कर दिनांक 25.06.2020 को उपस्थित होने को कहा था। याचिकाकर्ता अधिवक्ता के माध्यम से उपस्थित हुआ एवं उसके द्वारा कुछ समय मांगा गया, उनके द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट को रिट पिटिशन के माध्यम से चुनौती दी गयी एवं रिट पिटीशन संख्या (क्रिमिनल संख्या) 1855 के 2020, कार्थिक जयशंकर एवं अन्य बनाम उत्तराखंड राज्य एवं अन्य में दिनांक 26.06.2020 को, माननीय उच्च न्यायालय ने अंतरिम आदेश पारित कर याचिकाकर्ताओं के विरूद्ध किसी भी प्रकार के अनुचित कदम लेने से राज्य को निषेधित किया था, परंतु इसके बाद भी, जांचकर्ता द्वारा दिनांक 20.07.2020 को बिना याचिकाकर्ताओं की उपस्थिति के आरोप पत्र दाखिल कर दिया गया। इसके अलावा याचिकाकर्ताओं के विरूद्ध मामले में विजय अधिकारी को गवाह बनाया गया ताकि याचिकाकर्ताओं के खिलाफ मामला बनाया जा सके। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा तर्क दिया गया कि इससे पूर्व भी वर्ष 2017 में याचिकाकर्ता और सूचनाकर्ता के मध्य विवाद था, जिसे दिनांक 12.10.2017 को समझौते के माध्यम से निपटा दिया गया था, जिसमें विजय अधिकारी भी गवाह रहे थे।

4.16. प्रथम सूचना रिपोर्ट एवं आरोप पत्र दोषपूर्ण है। यह तर्क दिया गया कि याची संख्या 1 अधिवक्ता है वे बिरेन्द्र सिंह की पैरवी उस मामले में कर रहे हैं, जिसमें कुछ बिल्डर उस क्षेत्र की पारिस्थितिकी को नष्ट करना चाहते हैं, जिसमें एक रिट पिटीशन (पब्लिक इंटरेस्ट लिटीगेशन) संख्या 44 के 2020, बिरेन्द्र सिंह बनाम भारतीय संघ एवं अन्य है। इस रिट पिटीशन में यह तर्क दिया गया कि दिवान्या रिजॉर्ट्स प्रा. लि. (निर्माता) की पैरवी प्रबंध निदेशक, मुरारी साह, के द्वारा की जा रही है जो कि प्रथम सूचनाकर्ता के काफी करीबी है। चूंकि याची संख्या 1 स्थानीय लोगों के के मुद्दे को उठाते हैं एवं बिल्डरों द्वारा वनों को नष्ट होने से रोक रहे हैं, इसलिए याचिकाकर्ताओं को मामले में झूठा फंसाया गया है। माननीय उच्च न्यायालय में लम्बित सिविल अपील संख्या 8560/2018 बिरेन्द्र सिंह बनाम पर्यावरण वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय का हवाला देते हुए कहा गया कि याचीकर्ता इस मामले को देख रहे हैं। लगभग 8.5 है0 वन भूमि के सम्बंध में यह मामला है, जिस कारण दबाव बनाने हेतु याचिकाकर्ता को इस मामले में झूठा फंसाया गया है।

4.17. प्रथम सूचना रिपोर्ट विश्वसनीय नहीं हैं, क्योंकि यह दिनांक 28.05. 2020 को दी गयी थी जबकि, इसे दिनांक 01.06.2020 को दर्ज किया गया।

4.18. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा तर्क दिया गया कि याची संख्या 1 एक अधिवक्ता हैं उनके भविष्य को क्षति पहुंचाने के लिए यह कार्यवाही की गयी है ताकि याची संख्या 1 स्थानीय लोगों के मुद्दों को जनहित याचिका में या बिल्डरों के विरूद्ध माननीय उच्चतम न्यायालय में न उठा सके, इसलिए यह कार्यवाही रद्द किये जाने योग्य है।

5. दूसरी ओर, विपक्षी संख्या 2 की ओर से विद्वान अधिवक्ता द्वारा तर्क दिया गया कि कार्यवाही दोषपूर्ण नहीं है। किसी कार्य में दोषपूर्णता को आकर्षित करने के लिए, मामला जांच का हिस्सा होना चाहिए, जैसे न्यायालय का आदेश, इत्यादि। या यह प्रश्न सदाचार का होना चाहिए, लेकिन प्रस्तुत मामलें में इन तथ्यों की कमी देखी गयी है। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने कप्तान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य **(2021) 9** एस.सी.सी. **35** मामले में निर्धारित न्याय के सिद्धांतों हवाला देते हुए दावा किया है कि धारा 482 के तहत केवल विचारण के दौरान उपलब्ध सामग्री का विचार किया जा सकता है। उससे आगे, मामले की जांच नहीं की जा सकती है।

5.1. कप्तान सिंह (उपरोक्त) के मामले में, संहिता की धारा 482 के तहत एक प्रक्रिया में लिया गया निर्णय बरकरार नहीं रखा गया, क्योंकि न्यायालय ने यह पाया कि कुछ विवादित संयुक्त नोटरी शपथपत्र न्यायालय द्वारा विचार में लिये गये थे। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा निम्नलिखित मुद्दों को उठाया गया है–

5.2. याचिका पोषणीय नहीं है।

5.3. अधिनियम की धारा 14क संहिता की धारा 482 के तहत न्यायालय के अधिकार को समाप्त नहीं करती है बल्कि, यह वह वैकल्पिक उपचार प्रदान करती है जहां याची अपने आपत्तियों को प्रस्तुत कर सकते हैं। अधिनियम की धारा 8(ग) पर संदर्भ देते हुए दावा किया गया कि याचिकाकर्ताओं को सूचनाकर्ता की जाति का पता था।

5.4. अभियुक्त का तलबी आदेश अंतर्ववर्ती आदेश नहीं है। संजय कुमार राय बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य, 2021 एस.सी.सी. ऑनलाईन एस.सी. **367** एवं

प्रभु चावला बनाम राजस्थान एवं अन्य, 2016 (16) एस.सी.सी. 30 के मामलों का हवाला दिया गया।

5.5. प्रभु चावला (उपरोक्त) के मामले में, उच्चतम न्यायालय द्वारा दो विपरीत निर्णयों के बीच के विवाद को तय किया और अवधारित किया कि धारीवाल टोबैको प्रोडक्ट्स लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2009 (2) एस.सी.सी. 370 एक अच्छा कानून है। धारीवाल (उपरोक्त) के मामले में, उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट रूप से यह कहा है कि "निःसंदेह अभियुक्त को बुलाने हेतु समन जारी करना, दंड संहिता की धारा 397 के अंतर्गत एक अंतरिम आदेश नहीं है।"

5.6. संजय कुमार राय (उपरोक्त) के मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया कि "आरोपों को विरचित करना या उन्मोचन करने से इंकार करना, न ही अंतर्ववर्ती आदेश है, न ही अंतिम आदेश है, इसलिए इसलिए उन्हें दंड संहिता की धारा 397 (2) की प्रतिबंधिता से प्रभावित नहीं किया जा सकता है।"

5.7. उक्त मामले में कोई प्रथम दृष्टया मामला नहीं था। सार्वजनिक दृष्टि की अवधारणा का अर्थ सार्वजनिक स्थान नहीं होता है। यह "सार्वजनिक दृष्टि के अंदर एक स्थान" होना चाहिए।

5.8. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा हितेश वर्मा (सुप्रीम कोर्ट के मामले में) के निर्णय का संदर्भ दिया गया। प्रस्तुत मामले में भी जिसमें "सार्वजनिक स्थान" और "सार्वजनिक दृष्टि के अंदर एक स्थान" के बीच अंतर किया गया है।

5.9. राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा तर्क दिया गया कि प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुसार अपराध कारित किया गया है जिसमें किसी प्रकार के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

5.10. जांच कानून के अनुसार की गई है। जांच अधिकारी को अभियुक्त

को दिए गए बचाव को ध्यान में रखने की आवश्यकता नहीं होती है।

5.11. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार संहिता की धारा 41क के तहत याचिकाकर्ताओं को नोटिस दिया गया था, परंतु उनके द्वारा कार्यवाही में सहयोग नहीं किया गया। उनके द्वारा समय मांगा गया। जांच अधिकारी द्वारा जांच पूर्ण करने के बाद आरोपपत्र प्रस्तुत किया। इसे गलत नहीं कहा जा सकता है। इसे यह नहीं जा सकता है कि जांच पक्षपात पूर्ण है। जांच अधिकारी ने याचिकाकर्ताओं से सम्पर्क किया था।

5.12. याचिकाकर्ताओं द्वारा जांच में सहयोग नहीं किया गया। कार्यवाही दुर्भावपूर्ण नहीं है।

5.13. संहिता की धारा 482 के तहत प्रक्रियाओं को रद्द करने के लिए मात्र यह कह देना पर्याप्त नहीं है कि कार्यवाही दुर्भावपूर्ण है। इसे साबित करने के लिए प्रमाण होना चाहिए। यदि बिंदु बहस के योग्य होते हैं, तो उन्हें साबित करने की आवश्यकता होती है। उन्हें आपराधिक अभियोग की कार्यवाही को रद्द करने हेतु विचार में नहीं लिया जा सकता।

6. राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा तर्क दिया गया कि याचिका पोषणीय नहीं है। प्रथम दृष्टया अपराध अपराध बनना प्रतीत होता है। सूचनाकर्ता एवं गवाहों द्वारा अभियोजन के मामले को समर्थित किया गया है। तथ्यों को इस कार्यवाही में परीक्षित नहीं करना है, अतः मामले में किसी प्रकार के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है याचिका खारिज होने योग्य है।

7. याचिका की पोषणीयता का बिंदु उठाया गया और कहा कि अधिनियम की धारा 14क इस सम्बन्ध में अनुतोष प्रदान करती है। अतः प्रस्तुत याचिका पोषणीय नहीं है। अधिनियम की धारा 14क इस सम्बंध में निम्नवत् है–

14क अपीलः (1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में किसी बात के होते हुए भी, किसी विशेष न्यायालय या किसी अनन्य विशेष न्यायालय के किसी निर्णय, दंडादेश या आदेश, जो अंतर्वर्ती आदेश नहीं है, के विरुद्ध अपील तथ्यों और विधि दोनों के संबंध में, उच्च न्यायालय में होगी।

(2) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 378 की उपधारा (3) में किसी बात के होते हुए भी, विशेष न्यायालय या अनन्य विशेष न्यायालय के जमानत मंजूर करने या नामंजूर करने के किसी आदेश के विरुद्ध अपील उच्च न्यायालय में होगी।

(3) तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, इस धारा के अधीन प्रत्येक अपील, ऐसे निर्णय दंडादेश या आदेश से, जिससे अपील की गई है, 90 दिन के भीतर की जाएगी,

परंतु उच्च न्यायालय, 90 दिन की उक्त अवधि की समाप्ति के पश्चात् ऐसी अपील को ग्रहण कर सकेगा यदि उसका समाधान हो जाता है कि अपीलार्थी के पास 90 दिन के भीतर अपील नहीं करने का पर्याप्त कारण था,

परंतु यह और कि कोई अपील 180 दिन की अवधि की समाप्ति के पश्चात ग्रहण नहीं की जाएगी।

(4) उपधारा (1) में की गई प्रत्येक अपील का निपटारा, यथासंभव, अपील ग्रहण करने की तारीख से 3 मास की अवधि के भीतर होगा।

8. अधिनियम की प्रावधान निःसंदेह समाज के एक वर्ग एक को संरक्षित करने के लिए बनाये गये हैं ताकि उस समूह की सामाजिक–आर्थिक स्थिति में सुधार हो सके। अधिनियम के उद्देश्य और कारण इस सम्बन्ध में स्पष्ट हैं।

9. अधिनियम की धारा 14क अपील के मामले में संहिता के प्रावधानों से अलग है, इसके अनुसार, अंतर्ववर्ती आदेशों को छोड़कर सभी आदेश अपील योग्य है।

10. अधिनियम की धारा 14क(2) प्रावधानित करती है कि मामले में जमानत देने या अस्वीकार करने का आदेश भी अपील योग्य है।

11. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा संहिता की धारा 4 और 5 का हवाला देते हुए कहा कि अपील के सम्बन्ध में इस अधिनियम के तहत विशेष प्रावधान दिये गये हैं इसलिए, अंतर्ववर्ती आदेशों के मामले में, संहिता के प्रावधान लागू नहीं होंगे। उन्होंने यह भी दावा किया कि अधिनियम की धारा 14क(1) अंतर्ववर्ती आदेशों के मामले में अपील को रोकती है, लेकिन स्पष्ट करती है कि ऐसे अंतर्ववर्ती आदेश केवल जमानत के मामले में होने चाहिए, जैसा कि इसके उपधारा 2 में दिया गया है। यह व्याख्या शायद धारा 14क(1) एवं धारा 14क(2) की सही

व्याख्या नहीं है।

12. संहिता की धारा 4 और 5 में संहिता के प्रावधानों के लागू होने के संबंध में प्रावधान किया गया है। वे इस प्रकार हैं–

धारा 4 भारतीय दंड संहिता और अन्य विधियों के अधीन अपराधों का विचारण–

(1) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) के अधीन सब अपराधों का अन्वेषण, जांच, विचारण और उनके संबंध में अन्य कार्यवाही इसमें इसके पश्चात् अन्तर्विष्ट उपबंधों के अनुसार की जाएगी।

(2) किसी अन्य विधि के अधीन सब अपराधों का अन्वेषण, जांच, विचारण और उनके संबंध में अन्य कार्यवाही इन्हीं उपबंधों के अनुसार किंतु ऐसे अपराधों के अन्वेषण, जांच, विचारण या अन्य कार्यवाही की रीति या स्थान का विनियमन करने वाली तत्समय प्रवृत्त किसी अधिनियमिति के अधीन रहते हुए, की जाएगी।

धारा 5 व्यावृत्ति–

इससे प्रतिकूल किसी विनिर्दिष्ट उपबंध के अभाव में इस संहिता की कोई बात तत्समय प्रवृत्त किसी विशेष या स्थानीय विधि पर, या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा प्रदत्त किसी विशेष अधिकारिता या शक्ति या उस विधि द्वारा विहित किसी विशेष प्रक्रिया पर प्रभाव नहीं डालेगी ।

13. संहिता की धारा 5 यह स्पष्ट करती है कि यदि किसी विशेष कानून के तहत विशेष प्रावधान होते हैं तो वे लागू होंगे और इसके अभाव में, संहिता के प्रावधान लागू होंगे।

14. अधिनियम की धारा 14क अंतर्वर्ती आदेशों में अपील को प्रतिबंधित करती है। अधिनियम की धारा 14क(2) के अनुसार जमानत के आदेशों की अपील की जा सकती है। अधिनियम की धारा 14क(2) यह स्पष्ट नहीं करती है कि अधिनियम की धारा 14क(1) के तहत अंतर्वर्ती आदेश कौन से होंगे बल्कि, इसमें जमानत के संबंध में अंतर्वर्ती आदेशों को अपवाद बनाया गया है। वी0सी0 शुक्ला (उपरोक्त) के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने, प्रस्तर संख्या 34 में दो श्रेणी के मामलों की संक्षेप में व्याख्या की अंतर्वर्ती आदेश या अंतिम आदेश, परंतु अंतर्वर्ती आदेशों के सम्बंध में माननीय उच्चतम न्यायालय ने प्रभु चावला के मामले

में धारीवाल के मामले में प्रतिपादित सिद्धांतों की पुष्टि की, जिसमें यह अवधारित किया गया था कि तलबी आदेश एक अंतर्ववर्ती आदेश नहीं है।

15. धारा 14क(1) अंतर्ववर्ती आदेशों को छोड़कर अन्य मामलों में अपील के सम्बंध में है। क्या इसका यह मतलब है कि याचिकाकर्ता को इसकी अपील करनी चाहिए थी एवं उसकी याचिका संहिता की धारा 482 के तहत याचिका पोषणीय नहीं है ?

16. संहिता की धारा 482 का प्रयोग न्यायालय के किसी भी न्यायिक प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या किसी आदेश को प्रभावी करने के लिए या न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया जा सकता है। यह एक व्यापक क्षेत्राधिकार है, जो विधि के सिद्धांतों के अनुसार प्रयोग किया जाता रहा है, जैसा कि माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा भी कई निर्णयों में यह अवधारित किया गया है।

17. दिनेश दत्त जोशी बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य (2001) एस.सी.सी. 570, में माननीय उच्चतम न्यायालय ने अवधारित किया कि वास्तविक और सारवान न्याय करने के लिए इसका प्रयोग किया जा सकता है। प्रस्तर संख्या 6 में, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया है कि–

''6. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 उच्च न्यायालय को किसी आदेश को प्रभावी बनाने के लिए, किसी न्यायालय के प्रक्रिया का दुरुपयोग रोकने के लिए या न्याय के अंत को सुनिश्चित करने के लिए अंतर्निहित शक्तियां प्रदान करती हैं। यह विधि का प्रतिपादित सिद्धांत है कि सारवान न्याय हेतु प्रत्येक न्यायालय के पास अंतर्निहित शक्तियां होती है, जिनके द्वारा न्यायिक प्रक्रिया के दुरूपयोग को रोका जा सकता है। इस धारा का सिद्धांत प्रस्तुत मैग्जिम पर आधरित है कि जब विधि कोई अधिकार देती है तो उसके प्रवर्तन के लिए अनुतोष भी प्रदान करती है। यह धारा कोई नई शक्ति प्रदत्त नहीं करती, बल्कि इस धारा में अंतर्निहित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु उच्च न्यायालय को प्रदान की गयी अंतर्निहित शक्तियों की घोषणा करती है। कभी–कभार प्रक्रियात्मक कानून में कोई कमी होने पर यह धारा उस कमी को पूरा करती है। उच्च न्यायालय को प्रदत्त इन असाधारण शक्तियों का प्रयोग असाधारण मामलों में ही किया जाना चाहिए।

18. याचिकाकर्ताओं की ओर से मुख्यतः कोई प्रथम दृष्टया मामला न होने एवं प्रावधानों के द्वेषपूर्ण होने के आधार पर चुनौती दी गई है।

19. हरियाणा राज्य बनाम च. भजन लाल ए0आई0आर0 **1992** एस0सी0 604 में माननीय उच्चतम न्यायालय ने उन परिस्थितियों को निर्धारित किया गया, जहां पर क्षेत्राधिकार का प्रयोग किया जा सके। प्रस्तर संख्या 102 में, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया कि–

"102. संहिता के अध्याय XIV के तहत विभिन्न प्रासांगिक धाराओं की व्याख्या और इस न्यायालय द्वारा कई निर्णयों में दिये गये कानून के सिद्धांतों के प्रकाश में यह स्पष्ट किया है कि न्यायालय द्वारा असाधारण शक्ति का प्रयोग अनुच्छेद 226 के तहत या संहिता की धारा 482 के तहत प्राप्त शक्तियों के कारण किया जाता है। हम निम्नलिखित मामलों की श्रेणियों को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं जहां ऐसी शक्तियों का प्रयोग किया जा सकता है, जिसका उद्देश्य किसी भी अदालत की प्रक्रिया के दुरूयोग को रोकने के लिए या न्याय के उद्देश्यों को सुनिश्चित करने करने के लिए हो, हालांकि कोई निश्चित, स्पष्ट और पर्याप्त दिशा–निर्देश निर्धारित किया जाना और पर्याप्त सूचीबद्ध मामले देना सम्भव नहीं है।"

(1) यदि प्रथम सूचना रिपोर्ट के आरोपों को पूर्ण रूप से भी मान लिया जाये तो भी यदि वह प्रथम दृष्टया कोई अपराध का गठन नहीं करता है तो,

(2) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट के आरोप एवं अन्य सामग्री किसी संज्ञेय अपराध को स्पष्ट नहीं करती या पुलिस अधिकारी द्वारा संहिता की धारा 156 (1) के तहत की गयी जांच को सही नहीं ठहराती सिवायं वहां के जहां मजिस्ट्रेट संहिता की धारा 155(2) के तहत आदेश करता है।

(3). जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या परिवाद और उसके समर्थन में संग्रहित किये गये साक्ष्य अभियुक्त के विरूद्ध किसी भी प्रकार के अपराध का होना स्पष्ट नहीं करते हैं,

(4) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट के आरोप असंज्ञेय अपराध का होना दर्शित होता है एवं पुलिस अधिकारी बिना मजिस्ट्रेट के संहिता धारा 155(2) के आदेश के बिना जांच नहीं कर सकता है,

(5) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या परिवाद के आरोप किसी भी व्यक्ति के विरूद्ध

कार्यवाही करने के लिए प्रथम दृष्टया पर्याप्त नहीं है,

(6) जहां कोई संहिता की धारा या सम्बन्धित अधिनियम में (जिस के तहत एक आपराधिक प्रक्रिया प्रारम्भ होती है) में स्पष्ट रूप से कानूनी रोक होती है, और जहां संहिता या सम्बंधित अधिनियम में एक विशेष प्रावधान होता है, जो पीड़ित पक्ष के शिकायत पर प्रभावी सुधार उपलब्ध कराता है।

(7). जहां कोई कानूनी कार्यवाही अभियुक्त के विरूद्ध आपसी रंजिशन, द्वेषपूर्ण और अपमानित करने के उद्देश्य से की गयी हो

20. अधिनियम की धारा 18 के अनुसार, संहिता की धारा 438 इस अधिनियम के मामलों में लागू नहीं होती है परंतु भारत संघ के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया कि यदि अधिनियम के अंतर्गत मामले झूठे रूप से दाखिल किए गए हैं तो उन्हें धारा 482 के अधीन तय किया जा सकता है। निर्णय के प्रस्तर संख्या पैरा 52 में यहां उद्धृत किया जा चुका है। इसी तरह, पृथ्वी राज चौहान (उपरोक्त) में भी यही सिद्धांत लागू किये गये।

21. धारा 482 के तहत इस अधिनियम के अन्तर्गत आने वाले मामलों में क्षेत्राधिकार समाप्त नहीं किया जा सकता। यह कहा नहीं जा सकता कि जब किसी कार्यवाही के विरूद्ध धारा 482 के अधीन चुनौती की जाती है, तो पहले ही इसे इस आधार पर अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि यह सम्बंधित अधिनियम के प्रावधानों के तहत है। किसी दिए गए मामले की परिस्थितियों में ऐसे संदर्भ हो सकते हैं, जिसे इस मामले के पहलू को देखने की आवश्यकता हो।

22. यदि इस अधिनियम के तहत प्रथम दृष्टया मामला नहीं बनता है, तो न्यायालय, संहिता की धारा 482 के तहत मामले को विचार करने का अधिकार रखती है। ऐसे मामलों में, अधिनियम की धारा 14क की बाधा लागू नहीं हो सकती है।

23. प्रस्तुत मामले में यह महत्वपूर्ण तथ्य है कि यह पक्षकारों के बीच मुकदमे की पहली घटना नहीं है। वर्ष 2017 में एक पूर्व मामले में, दोनों पक्षों ने एक दूसरे के खिलाफ रिपोर्ट दर्ज की थी, जिसे बाद में समझौते के माध्यम से हल कर दिया गया। यह एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है। इसे याचिकाकर्ता द्वारा संलग्नक 2 के रूप

में याचिका के साथ पेश किया गया है। समझौतानामा के अनुसार सूचनाकर्ता को अपनी संपत्ति का सीमांकन याचिकाकर्ता की सहायता से निर्धारण करवाना था, परंतु सूचनाकर्ता द्वारा सीमांकन नहीं कराया गया, बल्कि उसने एक झूठी एफआईआर दर्ज करा दी।

24. दिनांक 12.10.2017 को हुए समझौता प्रस्तुत किया गया था जिसे यहां याचिकाकर्ताओं द्वारा दाखिल की गई याचिका के प्रस्तर संख्या 6 में उल्लेख किया गया है, जिसका जवाब सूचनाकर्ता द्वारा अपने जवाबी हलफनामें के प्रस्तर संख्या 42 में दिया गया है। यह स्वीकृत है कि पक्षकारों के मध्य सम्पत्ति विवाद है। सूचनाकर्ता द्वारा दाखिल किए गए जवाबी हलफनामें के प्रस्तर संख्या 42 से यह स्पष्ट होता है कि पक्षकारों के मध्य संपत्ति के कब्जे व स्वामित्व का विवाद है। इस विवाद को बेहतर ढंग से समझने के लिए, इस जवाबी हलफनामें के प्रस्तर संख्या 42 का एक हिस्सा निम्नलिखित है–

वास्तव में प्रार्थी संख्या 1 ही वह व्यक्ति हैं, जिन्होंने जिलिंग की शांति और सद्भाव को बाधित किया है, जब से उन्होंने अपनी ''जिलिंग इस्टेट'' के प्रबंधन का फैसला लिया है। वर्ष 2017 में प्रार्थी संख्या 1 ने श्री बिरेन्द्र सिंह को भ्रमात्मक एवं आधारहीन तथ्यों के आधार पर विपक्षी संख्या 2 के विरूद्ध अवैध रूप से उसकी सम्पत्ति हड़पने हेतु विभाजन मामला दायर करने के लिए प्रेरित किया, जिसे बिरेन्द्र सिंह के ससुर द्वारा उसे वर्ष 1982 में विक्रय किया जा चुका है। जैसा कि पूर्व में योजित विभाजन मामले को दिनांक 06.03.2018 को नैनीताल के कार्यपालिका मजिस्ट्रेट, प्रथम श्रेणी द्वारा इस आधार पर खारिज किया गया था कि प्रश्नगत भूमि पूर्व में ही पंजीकृत विक्रयपत्रों के माध्यम से क्रेता के पक्ष में स्थानांतरित की जा चुकी है। प्रार्थी संख्या 1 ने स्थानीय निवासियों की जमीन और सार्वजनिक भूमि पर हस्तक्षेप करके क्षेत्र में शांति को बाधित किया है और उक्त सम्पत्ति को लोगों को अपना होना बता रहे हैं। दिनांक 12.10.2017 को हुए समझौतेनामें के आधार पर विपक्षी संख्या 2 के द्वारा प्रार्थी के विरूद्ध इसलिए मुकदमा दर्ज नहीं किया गया कि क्षेत्र की शांति और समरसता बनी रही।

25. सूचनाकर्ता द्वारा दाखिल जवाबी हलफनामें के प्रस्तर संख्या 42 के अवलोकन से स्पष्ट है कि उसने याचिकाकर्ता संख्या 1 के ससुर से कुछ संपत्ति खरीदी है। दिनांक 12.10.2017 का समझौता स्वीकार किया गया था। वर्तमान विवाद भी एक संपत्ति विवाद है। यह केवल इस कारण नहीं है कि सूचनाकर्ता एक

विशेष जाति या समुदाय से संबंधित है।

26. खुमान सिंह (उपरोक्त) एवं हितेश वर्मा (उपरोक्त) में विधि के प्रतिपादित सिद्धांत प्रस्तुत मामले में लागू होते हैं।

27. प्रस्तुत मामले में, पक्षकारों के मध्य संपत्ति के कब्जे और स्वामित्व का विवाद है। जाति संगठित टिप्पणियों के साथ अपमान का आरोप याचिकाकर्ताओं के खिलाफ है, जो उस संपत्ति पर दावा कर रहे हैं। यदि सूचनाकर्ता किसी विशेष जाति का सदस्य है, तो यह कानून के अधीन एक मामले को साबित नहीं करता है। निःसंदेह, वर्तमान मामले में अधिनियम के प्रावधान लागू नहीं होते हैं।

28. इस दृष्टिकोण से, यह न्यायालय इस मामले में संहिता के धारा 482 के तहत इस याचिका को पोषणीय पाता है। अधिनियम की धारा 14क के तहत यह याचिका बाधित प्रतीत नहीं होती है।

29. याचिकाकर्ताओं की ओर से यह तथ्य उठाया गया है कि घटना सार्वजनिक स्थान पर नहीं हुई है इसलिए, अधिनियम की धारायें लागू नहीं होती हैं। इस तथ्य में बल नहीं है। इस अधिनियम के प्रावधानों को लागू करने हेतु अपराध को सार्वजनिक स्थान पर होना चाहिए। उपरोक्त के अनुसार, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने हितेश वर्मा (उपरोक्त) के मामले में यह निर्धारित किया है कि यह सार्वजनिक दृश्य में स्थान है, न कि सार्वजनिक स्थान है।

30. सूचनाकर्ता का यह मामला है कि घटनास्थल सार्वजनिक दृश्य में है। बाहरी व्यक्ति, विजय अधिकारी, द्वारा घटना देखी गयी है, परंतु इस पहलू का अब कोई महत्व नहीं है, क्योंकि यह न्यायालय पहले ही निर्धारित कर चुका है कि पक्षों में संपत्ति के मालिकाना अधिकार और प्राप्ति के मामले में विवाद है और घटना संपत्ति के स्वामित्व और कब्जे के विवाद के कारण हुई है, इसलिए, अधिनियम के प्रावधान लागू नहीं होते हैं।

31. यह तर्क दिया गया कि जांच पक्षपात पूर्ण है। जांच अधिकारी ने संहिता की धारा 41क के तहत दिनांक 25.06.2020 को याची संख्या 1 को

उपस्थित होने हेतु नोटिस प्रेषित किया था। याचिका के प्रस्तर संख्या 21 में, याचिकाकर्ताओं द्वारा संहिता की धारा 41क के बारे में बताया है। प्रस्तर संख्या 22 में, याचिकाकर्ताओं ने लिखा है कि जब उन्हें नोटिस मिला, तो उन्होंने अपने अधिवक्ता के माध्यम से उपस्थित होने का अनुरोध किया, लेकिन जांच अधिकारी ने उनकी अर्जी को स्वीकार नहीं किया।

32. राज्य द्वारा अपने जवाबी हलफनामें में (याचिका के प्रस्तर संख्या 21 और 22 में), प्रस्तर संख्या 9 में स्पष्ट रूप से प्रस्तर संख्या 21 और 22 को स्पष्ट नहीं किया है। यह कहा गया है कि ऐसे आरोप केवल कानून से स्वयं को बचाने के लिए किए गए हैं।

33. केवल इस कारण से कि याचिकाकर्ताओं का परीक्षण जांच के दौरान नहीं हुआ है, यह नहीं कहा जा सकता कि जांच अधिकारी जांच के प्रति पक्षपात रखता था। यह मामले को अनावश्यक रूप से बढ़ाने जैसा होगा।

34. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा तर्क दिया गया कि जांच न्यायसंगत और निष्पक्ष होनी चाहिए और यह जीवन के अधिकार का एक गुण है। उनके द्वारा बाबूभाई बनाम गुजरात राज्य एवं आदि 2010(12) एस0सी0सी0 254 का हवाला दिया गया है। उसके प्रस्तर संख्या 32 में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने अवधारित किया कि–

"32. एक आपराधिक मामले की जांच में ऐसी कोई असंगतता या दुर्बहुलता नहीं होनी चाहिए जो विधि के आधार पर आरोपी को परेशान करने का कारण बन सकती है। जांच अन्यायपूर्ण और एक गुप्त उद्देश्य के साथ की हुई नहीं होनी चाहिए। इसके साथ ही जांच करने वाले अधिकारी का यह कर्तव्य होता है कि वह जांच को किसी भी प्रकार के पक्षपात और परेशानी के बिना आगे बढ़ाये और किसी भी आरोपी को तंग, परेशान करने से बचे। जांच करने वाले अधिकारी को निष्पक्ष और सतर्क होना चाहिए, ताकि सबूतों से कोई भी छेड़छाड़ करने की सम्भावना को खारिज किया जा सके और उसका निष्पक्ष आचरण उसकी सत्यता पर किसी भी संदेह को दूर करने वाला हो। जांच करने वाले अधिकारी का कर्तव्य सिर्फ अभियोजन मामले को इस प्रकार मजबूत करना नहीं है कि वह दोषसिद्ध किये जाने योग्य हो, बल्कि वास्तविक तथ्यों को उजागर करना है। आर0पी0 कपूर बनाम

पंजाब राज्य {ए0आई0आर0 1960 एस.सी. 866 : 1960 कि. 1239} जमुना चौधरी बनाम बिहार राज्य {(1974) 3 एस.सी.सी. 774 : 1974 एस.सी.सी (कि.) 250 : ए 0आई0आर0 1974 एस0सी0 1822}, एस0सी0सी0 पृष्ठ 780, प्रस्तर संख्या 11 एवं महमूद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य {(1976) 1 एस.सी.सी. 542 : 1976 एस.सी.सी (कि.) 72 : ए0आई0आर0 1976 एस0सी0 69})

35. कानून के सिद्धांतों पर संदेह नहीं किया जा सकता। एक निष्पक्ष जांच ही एक निष्पक्ष विचारण को सुनिश्चित करती है।

36. यह भी तर्क दिया गया है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 28.05. 2020 को दी गई थी, परंतु इसे दिनांक 01.06.2020 को दर्ज किया गया। निम्नलिखित मुद्दों कों संहिता की धारा 482 की प्रक्रिया के तहत नहीं देखा जाना चाहिए कि–ऐसा क्यों किया गया था ? क्या आरोपी ने 28.05.2020 को एफआईआर दी थी ? यदि हाँ, तो जांच अधिकारी ने इसे क्यों नहीं पंजीकृत किया? यदि आवश्यक हो, इन प्रश्नों को विचारण के स्तर पर देखा जा सकता है।

37. प्रस्तुत मामले में कार्यवाही को द्वेषपूर्ण बताया गया। इस पहलु को निश्चित रूप से और अधिक समीक्षा की आवश्यकता होती है। प्रस्तुत मामले में याचिकाकर्ताओं का कथन है कि कुछ बिल्डरों द्वारा नैनीताल के पहाड़ी क्षेत्र ''जिलिंग इस्टेट'' की सम्पत्ति को हड़पने का प्रयास किया जा रहा था। स्थानीय निवासियों में से एक व्यक्ति ने इस मामले में सामाजिक हित के लिए एक जनहित याचिका दायर की है, जिसकी पैरवी याची संख्या 1 कर रहे हैं, जिसमें प्रार्थी उत्तरादाता संख्या 3 के रूप में है। आरोप यह है कि मुरारी साह सूचनाकर्ता की सहायता से याची को फंसाने का प्रयास कर रहा है, ताकि याचिकाकर्ता को उनके विरूद्ध योजित मामलों में उपस्थित होने से रोका जा सके। माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा इस सम्बन्ध में निर्देश दिये गये थे कि भूमि का सीमांकन किया जाये। याचिकाकर्ता द्वारा उक्त कार्यवाही में संलग्नक–2 के अनुसार बिरेन्द्र सिंह की ओर से पैरवी की गयी थी।

38. यह भी तर्क दिया गया कि बिल्डरों द्वारा राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण केउ समक्ष कुछ दस्तावेज प्रस्तुत किये गये जो सामान्यतः सूचनाकर्ता के कब्जे में

होने चाहिए थे। सूचनाकर्ता द्वारा बिरेन्द्र सिंह के परिवार को कई पत्र प्रेषित किये गये, जो अदम तामील रहे। सामान्य प्रक्रिया में वो पत्र सूचनाकर्ता के कब्जे में होने चाहिए थे, परंतु एन0जी0टी की कार्यवाही में वो पत्र मुरारी साह द्वारा अपने शपथपत्र के माध्यम से प्रस्तुत किये गये, जिससे यह दर्शित होता है कि मुरारी साह, डेवान्या रिजॉटर्स प्राईवेट लिमि0 के मालिक और सूचनाकर्ता के बीच सम्बन्ध है।

39. सूचनाकर्ता द्वारा तर्क दिया गया कि न्यायालय इस कार्यवाही में विवेचना में इकट्ठे किये गये साक्ष्यों से बाहर नहीं जा सकता।

40. निःसंदेह न्यायालय इस कार्यवाही में स्वीकृत दस्तावेज या वर्तमान परिस्थितियों या विवेचना में इकट्ठे किये गये साक्ष्यों से बाहर नहीं जा सकता। द्वेषपूर्ण भावना एक मानसिक अवस्था है, जो किसी पक्ष के कृत्यों द्वारा देखी जा सकती है।

41. इस न्यायालय द्वारा भूपाल सिंह एवं अन्य बनाम उत्तराखण्ड राज्य एवं अन्य आपराधिक प्रकीर्ण संख्या 1136 वर्ष 2013 के प्रस्तर संख्या 11 से 29 एवं 31 में द्वेषपूर्ण शब्द एवं सम्बन्धित कानून की चर्चा की गयी।

"21 मैलाफाइड का शाब्दिक अर्थ होता है बुरी नीयत या छल करने का इरादा। बिहार राज्य एवं अन्य बनाम पी0पी0 शर्मा एवं अन्य 1992 एस.सी.सी. (कि.) 192 में माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि शक्ति का मैलाफाइड उपयोग करने के प्रश्न का महत्व केवल तब उठता है, जब आपराधिक मान्यता और अनाधिकृत उद्देश्य हेतु यह प्रयोग की जाती है। (प्रस्तर संख्या 22) इसके अलावा यह देखा गया है कि इस बात का कोई साक्ष्य नहीं था कि इसका मुख्य उद्देश्य दोषारोपण करने का या निर्दोष व्यक्तियों को परेशान करने और उन्हें दबाने का था। न्यायालय द्वारा बिहार राज्य बनाम जे.ए.सी. सल्दाना में यह निर्णय दिया है कि जब सूचना पुलिस थाने में दर्ज की जाती है और एक अपराध पंजीकृत किया जाता है तो सूचनाकर्ता के इरादे को महत्व कम दिया जायेगा। यह विवेचना के दौरान इकट्ठी की गयी सामग्री होगी, जो अभियुक्त पर लगाये गये आरोपों को तय करेगी।

"22 माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा द्वेषपूर्ण शब्द की चर्चा कर अवधारित किया गया कि–

49. उपरोक्त मामले के मुख्य बिंदु यह है कि क्या शिकायतकर्ता आर.के. सिंह या जांच अधिकारी जी.एन. शर्मा की कथित द्वेषपूर्ण आशय के कारण आरोप पत्र प्रभावित हआ है। एस0ए0 दि स्मिथ द्वारा ''प्रशासनिक कार्यों की न्यायिक समीक्षा'' के (तृतीय संस्करण, पृष्ठ 2932) में यह कहा गया है कि-

बुरी नीयत की अवधारणा कानूनी शक्तियों के प्रयोग में तब मानी जाती है, जब उसमें निष्पक्षता या धोखाधड़ी और द्वेष शामिल होता है। किसी शक्ति का प्रयोग कपटपूर्वक किया गया तब माना जाता है, जब उसके धारक का इरादा उस शक्ति का दुरूपयोग करना हो। उसका इरादा किसी सार्वजनिक हित या निजी हित का प्रोत्साहित करने का भी हो सकता है। एक शक्ति द्वेषपूर्ण रूप से युक्त होती है यदि उसके धारक की प्रेरणा, उससे सीधे प्रभावित होने वालों के प्रति निजी द्वेष की हो। प्रशासनिक विवेक का अर्थ होता है प्रशासनिक विवेक का अधिकार। इसका अर्थ विवेकपूर्ण न्याय करने का अधिकार होता है।

"50 मैलाफाइड का अर्थ होता है सद्भावना की कमी, किसी व्यक्ति की पक्षपातपूर्ण भावना, द्वेष, अनुचित उद्देश्य या गुप्त उद्देश्य।

"51 मैलाफाइड शब्द का विचार किसी प्रकार की कार्यवाही करने से पूर्व किया जाना चाहिए। इस सम्बंध में मात्र दावा या अस्पष्ट या निर्णायक कथन पर्याप्त नहीं है। यह सिद्ध किया जाना चाहिए कि इस कार्यवाही ने किसी भी ऐसे कारणों के लिए इसका प्रयोग किया, जो एक दिये गये मामले में प्राप्त या साबित किये गये तथ्य और परिस्थितियों द्वारा प्राप्त हो सकते हैं। यदि यह साबित किया जाता है कि यह अधिकार का दुरूपयोग करके या धोखा देने की नीयत से किया गया हो तो यह द्वेषपूर्ण माना जायेगा।**"**

23 माननीय उच्चतम न्यायालय ने जनरल फार्मास्यूटिकल वर्क्स लिमि0 एवं अन्य बनाम मौ0 सरफुलहक एवं अन्य (2005) 1 एस0सी0सी0 122 में निर्णय दिया कि यदि परिवादी द्वारा दाखिल शपथपत्र में किये गये कथनों से यह स्पष्ट होता है कि परिवाद द्वेषपूर्ण, तुच्छ, निरर्थक भावना से नहीं किया गया, उन परिस्थितियों में उच्च न्यायालय को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। जब किसी पुलिस थाने में सूचना पंजीकृत की जाती है और एक

अपराध पंजीकृत किया जाता है तो सूचनाकर्ता की दुष्प्रभाविता द्वितीयक होती है। यह जांच के दौरान इकट्ठा किये गये सामग्री और न्यायालय में प्रस्तुत साक्ष्य पर निर्भर होता है कि अभियुक्त की भूमिका उक्त मामले में किस प्रकार की रही है। मात्र द्वेषपूर्ण कहना किसी कार्यवाही को समाप्त करने के लिए पर्याप्त नहीं है। (धनलक्ष्मी बनाम आर0 प्रसन्न, बिहार राज्य बनाम पी0पी0 शर्मा, रूपन देओला बजाज बनाम कंवर पाल सिंह गिल, केरल राज्य बनाम ओ0सी0 कुट्टन, उत्तर प्रदेश राज्य बनाम ओ0पी0 शर्मा, रश्मि कुमार बनाम महेश कुमार भदडा, सत्विंदर कौर बनाम राज्य, भारतीय राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र सरकार और राजेश बजाज बनाम राज्य, भारतीय राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र) (प्रस्तर संख्या 11)

3 1990 एस.सी.सी. 686 : 1991 एस.सी.सी. (कि.) 142
4 1992 (1) एस.सी.सी. 222 : 1992 एस.सी.सी. (कि.)192 : ए.आई.आर. 1991 एस.सी 1260
5 (1995) 6 एस.सी.सी. 194 : 1995 एस.सी.सी. (कि.) 1059
6 (1999) 2 एस.सी.सी. 651 : 1999 एस.सी.सी. (कि.) 304 : ए.आई.आर. 1999 एस.सी 1044
7 (1996) 7 एस.सी.सी. 705 : 1996 एस.सी.सी. (कि.) 497
8 (1997) 2 एस.सी.सी. 397 : 1997 एस.सी.सी. (कि.) 415
9 (1999) 8 एस.सी.सी. 728 : 1999 एस.सी.सी. (कि.) 1503 : ए.आई.आर. 1999 एस.सी 3596
10. (1999) 3 एस.सी.सी. 259 : 1999 एस.सी.सी. (कि.)401

24. कर्नाटक राज्य बनाम एम0 देवेन्द्रप्पा (2002) 3 एस.सी.सी. 89 मामले में माननीय न्यायालय ने संहिता की धारा 482 के अधिकार क्षेत्र की व्याख्या की है।

6..... सभी न्यायालय चाहे सिविल हों या क्रिमिनल किसी विशेष प्रावधान की अनुपस्थिति में संविधान द्वारा प्रदत्त अन्तर्निहित शक्तियों का प्रयोग न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कर सकते हैं। इसके सम्बन्ध में एक मैग्जिम है–''क्वांदे लेक्स अलिक्विड अलिक्वी कॉन्सेडित, कॉन्सेडेरे विदेरेटूर इन सीने क्वी इप्सा एसे नॉन पॉटेस्ट'' (जब कानून किसी व्यक्ति को कुछ देता है तो वह उसे ऐसा कुछ देता है जिसके बिना वह अस्तित्व में नहीं हो सकता है)। इस धारा के तहत प्रदान शक्तियों का प्रयोग करते समय न्यायालय अपीलीय न्यायालय या पुनरीक्षण न्यायालय की तरह कार्य नहीं करती है। अन्तर्निहित शक्ति का एक व्यापक क्षेत्र है, परंतु इसे सावधानीपूर्वक प्रयोग किया जाना चाहिए। न्याय के सारवान उद्देश्य की पूर्ति के लिए एवं न्यायिक प्रक्रिया के दुरूपयोग से बचने के लिए इसका प्रयोग किया जाना चाहिए। यह न्यायिक प्रक्रिया का दुरूपयोग कहलायेगा यदि न्याय के उद्देश्यों को अनदेखा किया जाये। इस धारा के तहत

प्रदान शक्तियों को प्रयोग करते समय यदि न्यायालय यह पाता है कि उक्त कार्यवाही से मात्र न्यायिक प्रक्रिया का दुरूपयोग किया गया है या उक्त कार्यवाही को रद्द करने से न्यायिक उद्देश्यों की पूर्ति हो जायेगी उन परिस्थितियों में न्यायालय द्वारा किसी भी प्रक्रिया को रद्द करना न्याय संगत होगा।

25. देवेन्द्रप्पा उपरोक्त के मामले में माननीय न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया है कि किसी भी व्यक्ति के लिए न्यायिक प्रक्रिया अत्याचार का उपकरण नहीं होना चाहिए और निरर्थक परेशानी का बोझ नहीं होना चाहिए। न्यायालय को कार्यवाही के दौरान सतर्क और विचारशील होना चाहिए और सभी प्रासंगिक तथ्य और परिस्थितियों को ध्यान में रखना चाहिए अन्यथा यह परिवादी के हाथों में एक उपकरण होगा, जिससे किसी व्यक्ति को बेवजह पीड़ा कारित होगी।

26. चंद्रपाल सिंह और अन्य बनाम महाराज सिंह और एक और मामले में माननीय न्यायालय ने अन्य कईं बातों के साथ यह अवलोकन किया कि विपक्षी के अधिवक्ता द्वारा यह संज्ञान में लाया गया कि झूठी गवाही देने की प्रवृत्विव बहुत बढ़ गयी है और जब तक न्यायिक प्रक्रिया इस तरह के व्यक्तियों के ऊपर कड़ी कार्यवाही नहीं करेगी, तब तक कानूनी प्रक्रिया एक मजाक बनकर रह जायेगी। इस तर्क में कुछ बल है, लेकिन यह भी सत्य है कि निराश और परेशान हुए लोगों को आसानी से आपराधिक प्रक्रिया का प्रयोग नहीं करने दिया जायेगा। प्रस्तर संख्या 14

27. कर्नाटक राज्य बनाम मुनिस्वामी एवं अन्य के मामले में (1977) 2 एस.सी. सी. 699, माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया है–

"7. ..... उच्च न्यायालय अन्तर्निहित शक्तियां इसलिए प्रदान की गयी हैं ताकि न्याय के उद्दश्यों की पूर्ति की जा सके एवं प्रक्रिया किसी को तंग, परेशान करने का माध्यम न बन सके। आपराधिक मामले में अभियोजन का मुख्य उद्देश्य अभियोजन के पीछे छिपा उद्देश्य उच्च न्यायालय को न्यायहित में किसी कार्यवाही को रद्द करने के लिए पर्याप्त है। कानून के उद्देश्यों से न्याय का उद्देश्य कहीं बढ़कर है। विधि का मुख्य उद्देश्य न्याय की पूर्ति करना है। उच्च न्यायालय को यह अन्तर्निहित शक्तियां न्याय के उद्देदश्यों की पूर्ति हेतु प्रदान की गयी हैं। तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार किये बिना उच्च न्यायालय के न्याय करने के उद्देश्य की विस्तृतता और सीमाओं को समझना संभव

नहीं होगा।

28. पंजाब राज्य बनाम वी0के0 खन्ना ए0आई0आर0 2001 343 मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने द्वेषपूर्ण शब्द की व्याख्या करते हुए अवधारित किया कि–

मैलाफाइड शब्द का विधि में एक विशेष महत्व है, जिसे केवल कल्पनाओं या अनुमान के आधार पर नहीं समझा सकता, बल्कि कोई साक्ष्य होने चाहिए जो यह साबित करते हों कि उक्त कृत्य सद्भावना पूर्वक नहीं किया गया है। कोई भी कृत्य स्वयं में द्वेषपूर्ण नहीं होता, जब तक कि उसके साथ कोई गलत उद्देश्य जुड़ा हुआ न हो।

29. पेप्सी फूड लिमिटेड एवं अन्य बनाम विशेष न्यायिक मजिस्ट्रेट एवं अन्य (1998) 5 एस.सी.सी. 749 मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया कि–

"28. एक आपराधिक मामले में अभियुक्त को समन जारी कर बुलाना एक गंभीर मामला होता है। आपराधिक प्रक्रिया, सामान्य प्रकार से जारी नहीं की जा सकती। केवल यह इतना नहीं है कि परिवादी अपने दो गवाहों को लाकर आरोपों का समर्थन कर प्रक्रिया शुरू करा दे। किसी अभियुक्त को तलबी आदेश जारी करने में मजिस्ट्रेट द्वारा प्रयोग की गयी विवेककीय शक्ति दिखनी चाहिए। उसे मामले के आरोपों का परीक्षण कर एवं मौखिक एवं दस्तावेजी साक्ष्यों का परीक्षण करने के पश्चात् ही अभियुक्त को तलब करना चाहिए। तलबी आदेश जारी करने से पूर्व प्रारम्भिक साक्ष्य के दौरान मजिस्ट्रेट को मूकदर्शक नहीं बने रहना चाहिए, उसे पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्यों की सावधानी से समीक्षा कर या सुनिश्चित करना चाहिए कि क्या अभियुक्त के विरूद्ध प्रथम दृष्टया मामला बन रहा है।

"31. विनीत कुमार एवं अन्य (2017) 13 एस.सी.सी. 369 के मामले में पक्षकारों के मध्य पैसों का लेनदेन था एवं पराक्रम्य लिखत अधिनियम, 1882 की धारा 138 के तहत परिवाद विचाराधीन था। इस दौरान दूसरे पक्षकार द्वारा एक बलात्कार का केस दर्ज करा दिया गया, जिसकी अंतिम रिपोर्ट न्यायालय में प्रस्तुत हुयी परंतु प्रोटेस्ट पिटीशन में अभियुक्त को तलब कर दिया गया। उस मामले में यह तर्क दिया गया कि अभियक्त के विरूद्ध बलात्कार हेतु की गयी कार्यवाही द्वेषपूर्ण थी एवं परिवादी एवं उसके सदस्यों को एन0आई0 एक्ट के मामले

से बचाने हेतु की गयी थी। उस मामलें में कार्यवाही को रद्द किया गया एवं न्यायालय द्वारा प्रस्तर संख्या 41 में अवधारित किया गया कि–

''41. .....यदि किसी व्यक्ति द्वारा द्वेषपूर्ण उद्देश्य हेतु न्यायिक प्रक्रिया का दुरूपयोग किया गया हो वहां पर न्यायालय को उसके इस प्रयास को पूर्ण रूप से समाप्त करना होगा। यदि अभियोजन का मामला हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल के निर्णय में उल्लेखित श्रेणियों के अन्तर्गत आता हो वहां पर न्यायालय अभियोजन को इसकी अनुमति नहीं दे सकता। न्यायिक प्रक्रिया एक शुद्ध प्रक्रिया है, जिसे किसी का उत्पीड़न करने हेतु प्रयोग करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। यदि कोई साक्ष्य यह इंगित करता है कि कोई आपराधिक प्रक्रिया द्वेषपूर्ण आशय व अनुचित उद्देश्य के साथ की गयी हो वहां पर उच्च न्यायालय धारा 482 के तहत प्राप्त शक्तियों का प्रयोग उक्त कार्यवाही को रद्द करने हेतु प्रयोग करने में संकोच नहीं करेगा, जैसा कि हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल में पारित निर्णय के श्रेणी 7 में उल्लेखित किया गया है–

''(7) जहां पर कोई आपराधिक प्रक्रिया द्वेषपूर्ण आशय या अनुचित उद्देश्य या अभियुक्त पर आपसी रंजिशन के कारण या अनुचित प्रभाव डालने के उद्देश्य से की गयी हो।

" उपरोक्त श्रेणी 7 स्पष्ट रूप से वर्तमान मामले के तथ्यों को आकर्षित करती है। हालांकि, उच्च न्यायालय ने हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल 10 में पारित निर्णय का उल्लेख किया है, लेकिन उसने प्रस्तुत मामले के उन प्रासंगिक तथ्यों पर टिप्पणी नहीं की, जिन पर विवेचक द्वारा अंतिम रिपोर्ट दाखिल की गई थी। अतः यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि प्रस्तुत मामला उपर्युक्त मामला है जहां पर उच्च न्यायालय को दण्ड प्रक्रिया की धारा 482 के तहत शक्तियों का प्रयोग करना चाहिए था और अपराधिक प्रक्रिया को रद्द कर देना चाहिए।

42. "प्रस्तुत मामला वह मामला है जिसमें मुख्य विवाद सम्पत्ति का विवाद है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय में लम्बित सिविल अपील एवं जनहित याचिका के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वह याची संख्या 1 है, जो बिल्डरों के विरूद्ध बिरेन्द्र सिंह की पैरवी कर रहा है। मुख्य विवाद वनों का गैर वन गतिविधियों के लिए प्रयोग किया जाना है। दिनांक 11.02.2020 को सिविल अपील संख्या 8560 वर्ष 2018 में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने आयुक्त रिपोर्ट के एक पैराग्राफ को उद्धृत किया है। (याचिकाकर्ता का मामला है कि उस अपील में बिल्डर

एक पक्ष है एवं याची संख्या 1 अपीलार्थी की पैरवी कर रहा है)

"संपत्ति के लगभग एक चौथाई हिस्से में मुख्य रूप से ओक एवं चीड़ के वृक्ष हैं। यह क्षेत्र वन की तरह प्रतीत होता है। लगभग 40 प्रतिशत या उससे अधिक हिस्सा वन की परिभाषा के अन्तर्गत आने के कारण निश्चय ही यह वन कहे जाने योग्य है। हालांकि इसका वर्गीकरण वन संरक्षण अधिनियम के उद्देश्य से वन हेतु किया जा सकता है, जिसमें इस रिपोर्ट में पहले से वर्णित क्षेत्र में मौजूद वनस्पति के प्रकाश में राज्य द्वारा तैयार किए गए मसौदे में और माननीय उच्चतम न्यायालय के विभिन्न निर्णयों में से उद्धृत किया जा सकता है। निर्णय दिनांकित 12.12.1996 रिट पिटीशन (सिविल) याचिका संख्या 202 वर्ष 1995 टी.एन. गोदावर्मन बनाम भारत संघ एवं आदि, दि लैफरेज उमियम माईनिंग प्राईवेट लिमि0 बनाम भारत संघ आदि (2011 7 एस.सी.सी. 338) एवं आंनद आर्य एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य रिट पिटीशन (सिविल) याचिका संख्या 202 वर्ष 1995। तब तक, वन के क्षेत्र को राजस्व और वन विभाग द्वारा संयुक्त रूप से सर्वेक्षित और सीमांकन किया जाये एवं जब तक सर्वे और सीमांकन का कार्य पूर्ण नहीं होता, तब तक उस क्षेत्र में किसी को गैर क्रियाकलाप करने की अनुमति प्रदान नहीं की जायेगी।

43. न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया है कि यह क्षेत्र 8.5 है0 का है। माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा सिविल अपील में एवं इस न्यायालय द्वारा जनहित याचिका में पारित आदेश दिनांकित 11.02.2020 में भी सीमांकन हेतु निर्देशित किया गया था। न्यायालय द्वारा उस दिनांक को इस बात की अंडरटेकिंग ली गयी थी कि **कोई भी पेड़ बिना सक्षम प्राधिकारिता की अनुमति के बिना नहीं काटे जायेंगे।** यह आदेश दिनांक 23.03.2020 को जनहित याचिका में पारित किया गया था। जहां पर सम्पत्ति का विवाद था। पक्षकारों द्वारा पूर्व में अपने विवाद को सुलझा लिया गया था। विपक्षी संख्या 2 को अपनी सम्पत्ति का सीमांकन करना था, परंतु उसके द्वारा नहीं किया गया।

44. उपरोक्त कारकों को मिलाकर यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि वास्तव में विपक्षी संख्या 2 ने कार्यवाही को द्वेषपूर्ण आशय के साथ किया है। सम्पूर्ण प्रक्रिया द्वेषपूर्ण आशय से दूषित है तद्नुसार यह रद्द किये जाने योग्य है।

45. याचिका स्वीकार की जाती है। आरोप पत्र, तलबी आदेश एवं मामले

की सम्पूर्ण कार्यवाही रद्द की जाती है।

रवि बिष्ट

(रविन्द्र मैठानी, जे0)
22.08.2022